International Journal of Enhanced Research in Educational Development (IJERED), ISSN: 2320-8708
Vol. 3, Issue 3, May-June, 2015, pp: (59-65), Impact Factor: 1.267, Available online at: www.erpublications.com

हिन्दी साहित्य के विकास के विभिन्न काल

मुनेश कुमारी

हिन्दी साहित्य पर यदि समुचित परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाए तो स्पष्ट होता है कि हिन्दी साहित्य का इतिहास अत्यंत विस्तृत व प्राचीन है। सुप्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डॉ हरदेव बाहरी के शब्दों में, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास वस्तुतः वैदिक काल से आरम्भ होता है। यह कहना ही ठीक होगा कि वैदिक भाषा ही हिन्दी है। इस भाषा का दुर्भाग्य रहा है कि युग-युग में इसका नाम परिवर्तित होता रहा है। कभी 'वैदिक', कभी 'संस्कृत', कभी 'प्रकृत', कभी 'अपभ्रंश' और अब - हिन्दी। आलोचक कह सकते हैं कि वैदिक संस्कृत और हिन्दी में तो जमीन-आसमान का अन्तर है। पर ध्यान देने योग्य है कि हिब्रू, रूसी, चीनी, जर्मन और तमिल आदि जिन भाषाओं को 'बहुत पुरानी' बताया जाता है, उनके भी प्राचीन और वर्तमान रूपों में जमीन-आसमान का ही अन्तर है। पर लोगों ने उन भाषाओं के नाम नहीं बदले और उनके परिवर्तित स्वरूपों को 'प्राचीन', 'मध्यकालीन', 'आधुनिक' आदि कहा गया जबकि हिन्दी के सन्दर्भ में प्रत्येक युग की भाषा का नया नाम रखा जाता रहा।

किन्तु हिन्दी भाषा के उद्भव और विकास के सम्बन्ध में प्रचलित धारणाओं पर विचार करते समय हमारे सामने हिन्दी भाषा की उत्पत्ति का प्रश्न दसवीं शताब्दी के आसपास की प्राकृताभास भाषा तथा अपभ्रंश भाषाओं की ओर जाता है। अपभ्रंश शब्द की व्युत्पत्ति और जैन रचनाकारों की अपभ्रंश कृतियों का हिन्दी से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए जो तर्क और प्रमाण हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में प्रस्तुत किये गए हैं उन पर विचार करना भी आवश्यक है। सामान्यतः प्राकृत की अन्तिम अपभ्रंश अवस्था से ही हिन्दी साहित्य का आविर्भाव स्वीकार किया जाता है। उस समय अपभ्रंश के कई रूप थे और उनमें सातवीं-आठवीं शताब्दी से ही पद्य रचना प्रारम्भ हो गई थी।

साहित्य की दृष्टि से पद्यबद्ध जो रचनाएँ मिलती हैं वे दोहा रूप में ही हैं और उनके विषय, धर्म, नीति, उपदेश आदि प्रमुख हैं। राजाश्रित कवि और चारण नीति, शृंगार, शौर्य, पराक्रम आदि के वर्णन से अपनी साहित्य-रुचि का परिचय दिया करते थे। यह रचना-परम्परा आगे चलकर शौरसेनी, अपभ्रंश या प्राकृताभास हिन्दी में कई वर्षों तक चलती रही। पुरानी अपभ्रंश भाषा और बोलचाल की देशी भाषा का प्रयोग निरन्तर बढ़ता गया। इस भाषा को विद्यापति ने देसी भाषा कहा है, किन्तु यह निर्णय करना सरल नहीं है कि हिन्दी शब्द का प्रयोग इस भाषा के लिए कब और किस देश में प्रारम्भ हुआ। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि प्रारम्भ में हिन्दी शब्द का प्रयोग विदेशी मुसलमानों ने किया था। इस शब्द से उनका तात्पर्य 'भारतीय भाषा' का था।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने इस काल को संधि काल नाम से अभिहित किया है। राहुल सांकृत्यायन इस काल को सिद्धकाल कहते हुए यह मानते हैं कि सिद्ध काव्य हिंदी का काव्य है। दूसरी ओर आचार्य रामचद्र शुक्ल, आचार्य

हजारी प्रसाद द्विवेदी व उनके समर्थक इतिहास लेखक संवत 1000 के आस-पास वास्तविक हिंदी भाषा व साहित्य की शुरुआत मानते हैं। एक सामान्य विचारधारा के अनुसार 7वीं से 10वीं शताब्दी तक जो साहित्य सामग्री उपलब्ध होती है, उसे अंकुरण काल की रचनाएँ मानते हुए हिंदी साहित्य की पूर्वपीठिका मान लिया जाये. इसमें जैन, नाथ, व सिद्ध साहित्य को समाहित किया गया है। 10वीं शताब्दी से हिंदी साहित्य के आदिकाल की शुरुआत मानी गयी है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने पहली बार हिंदी साहित्य के इतिहास का कालगत एवं प्रवृत्तिगत दोनों रूपों में वर्गीकरण किया। सम्पूर्ण हिंदी साहित्य को तीन भागों में विभक्त कर उसकी सीमा का निर्धारण किया- आदिकाल (विक्रमी संवत 1050 से 1375 तक), मध्यकाल (विक्रमी संवत 1375 से 1900 तक), आधुनिक काल (विक्रमी संवत 1900 से अब तक) । प्रवृत्तियों का उल्लेख करते हुए उन्होंने साहित्य को 4 भागों में विभक्त किया - आदिकाल को वीरगाथा काल नाम दिया । मध्यकाल को दो भागों में विभक्त किया - पूर्व मध्यकाल और उत्तर मध्यकाल, उन्हें भक्तिकाल और रीतिकाल नाम दिया। आधुनिक काल को गद्यकाल नाम दिया।

11वीं शती तक अपभ्रंश के प्रभाव से हिंदी मुक्त हो चुकी थी। उसके बाद व्यापक रूप में भक्ति का आन्दोलन पूरे देश में आरम्भ हो गया और हिंदी के विविध रूपों के माध्यम से भक्तिकाव्य लिखा जाने लगा। सांस्कृतिक और साहित्यिक चेतना के रूप में यह एक नये युग का आरम्भ था। 17वीं शती तक आते-आते जब देश में मुगलों का साम्राज्य आया तब साहित्य की मुख्य प्रवृत्ति में भी परिवर्तन आया। भक्तिभावना की प्रधानता के स्थान पर श्रृंगार व अलंकरण की प्रवृत्ति मुख्य रूप ग्रहण करने लगी। 19वीं शती के मध्य में जब देश में अंग्रेजों का राज्य स्थापित हुआ तब सन 1857 की क्रांति ने राष्ट्रीय चेतना व राजनीतिक जागरण के क्षेत्र में आन्दोलन का रूप ले लिया।

यह आधुनिक युग का आरम्भ था। लोगों में भाग्यवाद और अकर्मण्यता की भावना लुप्त होने लगी। देश को राजनीतिक व सामाजिक रूप में स्वतंत्र कराने की इच्छा बलवती हो गई। अंग्रेजों के आने से देश में ज्ञान-विज्ञान व विदेशी सभ्यता का प्रसार होने लगा। देशी व विदेशी संस्कृतियों में संघर्ष होने लगा। अनेक परिवर्तन लक्षित हुए और आधुनिक नवजागरण प्रकाश में आया। नवजागरण की चेतना से साहित्यिक विषयों में परिवर्तन होने लगा, राष्ट्रीयता की भावना जन-जन को आंदोलित करने लगी। स्वराज्य की भावना बलवती हो गयी, जीवन के सभी क्षेत्रों में नैतिक सुधार की आवश्यकता महसूस होने लगी। व्यक्ति आत्म परीक्षण कर आत्म सुधार की भावना से भर उठा। यथार्थवादी सामाजिक चेतना का प्रादुर्भाव हुआ। यह आधुनिक युग का सूत्रपात था। इस प्रकार हम हिंदी साहित्य के इतिहास को चार कालों में विभक्त कर सकते हैं-

आदिकाल - संवत 1050 से 1375 तक

हिंदी साहित्य के इतिहास के प्रथम सोपान को सामान्यतः 'आदिकाल' के नाम से अभिहित किया जाता है और इसकी समय-सीमा विक्रमी संवत 1050 से 1375 (ईस्वी सन 993 से 1318) तक निर्धारित की गई है। भारतीय इतिहास के लिहाज से तो यह आरंभिक कालखंड भारी उथल-पुथल एवं संघर्ष का काल रहा ही है लेकिन साहित्यिक दृष्टिकोण से भी यह कालखंड परस्पर विरोधी रचना प्रवृत्तियों को अपने में समाहित करते हुए वैविध्यपूर्ण काव्य कृतियों के सृजन का काल भी रहा है। फलतः इस दौर में उपलब्ध साहित्यिक रचना

सामग्री और उसकी प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता के कारण इस काल के नामकरण और सीमांकन के संदर्भ में इतिहासकारों के बीच अनेक मतभेद रहे हैं। अनेक विचारक, चिंतक एवं साहित्यकार ने अपने-अपने तर्कों के आधार पर इसके नामकरण और सीमांकन का प्रयास किया है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मानना है कि यद्यपि आदिकाल की रचना सामग्री हमें आठवीं शताब्दी से ही प्राप्त होने लगती है लेकिन इन आरंभिक लगभग डेढ़ सौ वर्षों के भीतर की प्राप्त रचनाओं में एक ओर जहां किसी विशिष्ट निर्दिष्ट रचना प्रवृत्ति का ज्ञान नहीं होता है तो वहीं दूसरी ओर इस दौर में प्राप्त रचनाएं सांप्रदायिक, उपदेशात्मक एवं धार्मिक प्रचार-प्रसार हेतु लिखी गई रचनाएं साहित्यिकता से रहित प्रतीत होती हैं जिन्हें हम साहित्य की श्रेणी में नहीं रख सकते हैं। इस प्रकार से शुक्ल जी हिंदी भाषा की शुरूआत तो आठवीं शताब्दी से मान लेते हैं लेकिन विशुद्ध रूप से हिंदी साहित्य का आरंभ वे दसवीं शताब्दी से ही मानकर चलते हैं। लेकिन बाद में राहुल सांकृत्यायन की खोजों के आधार पर यह मान्यता स्वीकृत और विकसित हुई कि 'सरहपा' हिंदी के पहले कवि हैं और उनका समय 760 ईस्वी है। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी इसी मत का समर्थन किया और इस तरह से हिंदी साहित्य का आरंभ आठवीं शताब्दी से माना जाने लगा।

आदिकाल की उपलब्ध साहित्यिक रचना सामग्री के प्रति अलग-अलग इतिहासकारों की अलग-अलग समझ के कारण इसके नामकरण के संदर्भ में भी अनेक विवाद रहे हैं। जार्ज ग्रियर्सन ने इसे 'चारण काल' तो मिश्र बंधुओं ने 'प्रारंभिक काल' जबकि राहुल सांकृत्यायन ने 'सिद्ध-सामंत काल' नाम दिया। लेकिन शुक्ल जी ने वीरगाथात्मकता को इस युग के प्रमुख काव्य प्रवृत्ति मानकर रासो ग्रंथों को लक्षित करके आदिकाल के लिए 'वीरगाथा काल' का नाम सुझाया जो बाद के अनेक वर्षों तक स्वीकृत भी रहा। लेकिन आदिकालीन सामग्री पर हुए नवीन शोधों के आधार पर यह नामकरण अस्वीकारा जाने लगा और अंततः आदिकाल के नामकरण के संदर्भ में सर्वाधिक उपयुक्त एवं स्वीकृत मत आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा प्रस्तुत किया गया। इन्होंने हिंदी साहित्य के इस आरंभिक युग के लिए 'आदिकाल' नाम का प्रस्ताव रखा जो अपनी कुछ सीमाओं के बावजूद आज पूर्णतः स्वीकृत और लोकप्रिय भी है।

इस प्रकार, तमाम शोध और विचार-विमर्श के उपरांत ईस्वी सन 760 से लेकर 1318 तक के कालखंड को 'आदिकाल' की समय-सीमा के रूप में स्वीकृति प्राप्त हुई और इस आधार पर यह मान्यता स्वीकृत और विकसित हुई कि सिद्ध कवि 'सरहपा' हिंदी के पहले कवि हैं तथा 'विद्यापति' आखिरी। हिंदी साहित्य का आरंभ 'सरहपा' जैसे प्रसिद्ध सिद्ध कवि से और उसका अंत 'विद्यापति' जैसे श्रेष्ठ श्रृंगारिक कवि से होता है। 'सरहपा' और 'विद्यापति' हिंदी साहित्य के आदिकाल की दो सरहदें हैं जिनके बीच हिंदी भाषा और साहित्य अपनी विकास-यात्रा का आरंभिक सोपान तय करते हैं। आठवीं से चौदहवीं शताब्दी तक का काल हिंदी साहित्य में 'आदिकाल' के रूप में स्वीकृत हुआ।

भक्तिकाल - संवत 1375 से 1700 तक

हिंदी साहित्य में भक्तिकाल 1375 वि0 से 1700 वि0 तक जाना जाता है। हिन्दी साहित्य का मध्यकाल भक्तिकाल के नाम से प्रसिद्ध है। यह समय भक्तिकाल के नाम से प्रसिद्ध है। भक्तिकाल हिन्दी साहित्य का

श्रेष्ठ युग है। भक्तिकाल का आरंभ चौदहवीं-पंद्रहवीं शताब्दी से माना जाता है। हिन्दी साहित्य की उत्तम रचनाएं और समस्त श्रेष्ठ कवि इस युग में हुए हैं। दक्षिण में आलवार बंधु नाम से प्रसिद्ध भक्त हुए हैं। इनमें से अनेक नीची जातियों से थे। वे पढे-लिखे भी नहीं थे लेकिन बहुत ही अनुभवी थे। आलवारों के बाद दक्षिण में आचार्यों की एक परंपरा चली जिसमें रामानुजाचार्य प्रमुख थे। रामानुजाचार्य की परंपरा में आगे चलकर रामानंद हुए। रामानंद का व्यक्तित्व असाधारण था। वे उस समय के सबसे बड़े आचार्य थे। उन्होंने भक्ति के क्षेत्र में ऊंच-नीच का भेद ख़त्म किया। सभी जातियों के योग्य व्यक्तियों को उन्होंने अपना शिष्य बनाया। उस समय का सूत्र हो गया था-

रामानंद ने विष्णु के अवतार राम की उपासना पर ज़ोर दिया। रामानंद और उनके शिष्यों ने दक्षिण की भक्तिगंगा को उत्तर में प्रवाहित किया। पूरे उत्तर-भारत में भक्तिधारा बहने लगी। उस समय पूरे भारत में योग्य संत और महात्मा भक्तों का आविर्भाव हुआ।

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने पुष्टिमार्ग को स्थापित किया और विष्णु के कृष्णावतार की उपासना को प्रचारित किया। वल्लभाचार्य के द्वारा जिस लीला-गान का प्रसार हुआ उसने पूरे देश को प्रभावित किया। अष्टछाप के सुप्रसिद्ध कवियों ने वल्लभाचार्य के उपदेशों को मधुर कविता में बना जन-जन में पहुँचाया। वल्लभाचार्य के बाद माध्व और निंबार्क संप्रदायों का भी जन-मानस पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। साधना-क्षेत्र के दो अन्य संप्रदाय भी उस समय विद्यमान थे। नाथों के योग-मार्ग से प्रभावित संत संप्रदाय चला जिसमें संत कबीरदास प्रमुख है। मुस्लिम कवियों का सूफीवाद हिंदुओं के विशिष्टाद्वैतवाद से बहुत अलग नहीं है। कुछ भावुक मुस्लिम कवियों ने सूफीवाद में डूबी हुई अति उत्तम रचनाएं लिखी।

प्रसिद्ध कवि

भक्तिकाल की अवधि में कबीर, रैदास, नानक, दादूदयाल, सुंदर दास, मलूकदास, कुतबन, मंझन, जायसी, उसमान, सूरदास, परमानंददास, कुंभनदास, नंददास, हितहरिवंश, हरिदास, रसखान, ध्रुवदास, मीराबाई, तुलसीदास, अग्रदास, नाभादास आदि ने अपनी भक्तिपूर्ण रचनाओं से हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि की। इन कवियों के आराध्यों के नाम-रूप में प्रकटत: भले ही अंतर प्रतीत हो, समर्पण की भावना सभी में विद्यमान है।

काव्य-धाराएं

भक्तिकाल में चार प्रमुख काव्य-धाराएं मिलती हैं :

- ज्ञानाश्रयी शाखा,
- प्रेमाश्रयी शाखा,
- कृष्णाश्रयी शाखा
- रामाश्रयी शाखा।

- ज्ञानाश्रयी शाखा और प्रेमाश्रयी शाखा दोनों धाराएं निर्गुण मत में आती हैं।
- कृष्णाश्रयी शाखा और रामाश्रयी शाखा दोनों सगुण मत के अंतर्गत आती हैं।

ज्ञानाश्रयी शाखा

ज्ञानाश्रयी शाखा के भक्त-कवि निर्गुणवादी थे और नाम की उपासना करते थे। गुरु का वे बहुत सम्मान करते थे और जाति-पाति के भेदों को नहीं मानते थे। वैयक्तिक साधना को वह प्रमुखता देते थे। मिथ्या आडंबरों और रूढियों का विरोध करते थे। लगभग सभी संत अनपढ़ थे लेकिन अनुभव की दृष्टि से बहुत ही समृध्द थे।

प्रेमाश्रयी शाखा

प्रेमाश्रयी शाखा के मुस्लिम सूफी कवियों की काव्य-धारा को प्रेममार्गी माना गया क्योंकि प्रेम से ही प्रभु मिलते हैं ऐसी उनकी मान्यता थी। ईश्वर की तरह प्रेम भी सर्वव्यापी है और ईश्वर का जीव के साथ प्रेम का ही संबंध हो सकता है, यही उनकी रचनाओं का मूल तत्त्व है । उन्होंने प्रेमगाथाएं लिखी हैं। ये प्रेमगाथाएं फ़ारसी की मसनवियों की शैली पर रची गई हैं। इन गाथाओं की भाषा अवधी है और इनमें दोहा-चौपाई छंदों का प्रयोग किया गया है। मुस्लिम होते हुए भी इन कवियों ने हिन्दू-जीवन से जुड़ी कथाएं लिखी हैं। खंडन-मंडन न कर इन फ़क़ीर कवियों ने भौतिक प्रेम के माध्यम से ईश्वरीय प्रेम को वर्णित किया है।

कृष्णाश्रयी शाखा

कृष्णाश्रयी शाखा का सबसे अधिक प्रचार और प्रसार हुआ है। अनेक संप्रदायों में उच्च कोटि के कवि हुए हैं। इनमें वल्लभाचार्य के पुष्टि-संप्रदाय के सूरदास जैसे महान कवि हुए हैं। वात्सल्य एवं शृंगाररस के शिरोमणि भक्त-कवि सूरदास के पदों का परवर्ती हिन्दी साहित्य पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा है । इस शाखा के कवियों ने प्रायः मुक्तक काव्य ही लिखा है। श्री कृष्ण का बाल एवं किशोर रूप ही इन कवियों को आकर्षित कर पाया है इसलिए इनके काव्यों में श्रीकृष्ण के ऐश्वर्य की अपेक्षा माधुर्य की ही प्रधानता रही है।

रामाश्रयी शाखा

कृष्णभक्ति शाखा के अंतर्गत लीला-पुरुषोत्तम कृष्ण का गान रहा तो रामभक्ति शाखा के प्रमुख कवि तुलसीदास ने मर्यादा-पुरुषोत्तम राम का ध्यान किया। इसलिए कवि तुलसीदास ने रामचंद्र को आराध्य माना और 'रामचरितमानस' से राम-कथा को घर-घर में पहुंचा दिया। तुलसीदास हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। समन्वयवादी तुलसीदास में लोकनायक के सभी गुण मौजूद थे।

रीतिकाल - संवत 1700 से 1900 तक

संवत 1700 से संवत 1900 तक रीति-पद्धति पर विशेष जोर रहा। इस काल के प्रत्येक कवि ने रीति के साँचे में ढ़लकर रचना लिखी। डॉ. भगीरथ मिश्र के शब्दों में "उसे रस, अलंकार, नायिकाभेद, ध्वनि आदि के वर्णन के सहारे ही अपनी कवित्व-प्रतिभा दिखाना आवश्यक था।इस युग में उदाहरणों पर विवाद होते थे, इस बात पर कि उसमें कौन कौन-सा अलंकार है? कौन सी शब्द-शक्ति है?काव्यों की टीकाओं और व्याख्याओं में काव्य-सौंदर्य को स्पष्ट करने के लिए भी उसके भीतर अलंकार, रस, नायिकाभेद को भी स्पष्ट किया जाता था। अत: यह युग रीति-पद्धति का युग था।"

आचार्य शुक्ल ने इसे रीति-ग्रंथों की प्रचुरता के कारण ही रीतिकाल का नाम दिया।संस्कृत की तरह हिंदी में 'रीति' का अर्थ विशिष्ट 'पदरचना' नहीं है।रीतिकवि अथवा रीतिग्रंथ में प्रयुक्त रीति शब्द का अर्थ काव्य-शास्त्र से समझना चाहिए।संक्षेप में सभी काव्य-सिद्धांतों के आधार पर काव्यांगों के लक्षण सहित या उनके आधार पर लिखे गए उदाहरणों के आधार पर लिखे गए ग्रंथों को रीतिग्रंथ कहा जाता है।

बाबू श्यामसुंदर दास ने भी हिंदी साहित्य के उत्तर-मध्यकाल में शृंगार रस की प्रचुरता एवं रीतिमुक्त कवियों का महत्त्व स्वीकार करते हुए इसका नामकरण रीतिकाल ही उचित समझा।

मिश्रबंधुओं ने इसे 'अलंकृतकाल' कहा, किंतु उनका अभिप्राय: अलंकार के व्यापक अर्थ से था।उन्होंने मिश्रबंधु विनोद में स्पष्ट किया है कि-"इस प्रणाली के साथ रीतिग्रंथों का भी प्रचार बढ़ा और आचार्यत्व की भी वृद्धि हुई।आचार्य लोग स्वयं कविता करने की रीति सिखलाते थे।मानो वे संसार से यों कहते हैं कि अमुक-अमुक विषयों के वर्णन में अमुक प्रकार के कथन उपयोगी हैं और अमुक अनुपयोगी।"इतना कहने पर भी मिश्रबंधुओं ने इसे अलंकृतकाल ही कहा है,परंतु अलंकार काल कहने से इस काल की प्रमुख प्रवृत्ति का बोध नहीं होता।फिर अलंकार से यह भी स्पष्ट नहीं कि इससे ऐसी कविता को समझा जाए,जिसमें अलंकारों की प्रधानता है अथवा अलंकरण पर अधिक बल दिया गया है।यदि यह सोचा जाए कि इसमें अलंकारों का लक्षण-उदाहरण सहित विवेचन है,इसलिए इसका नाम अलंकार युग रखा गया,तो काव्य के अन्य अंगों का क्या ? अत: अलंकृत काल नाम इस युग का पूरा प्रतिनिधित्व नहीं करता।

पं विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इसे 'शृंगारकाल' नाम दिया। उनका मत है कि हिंदी-साहित्य का काल विभाजन करते हुए इतिहासकारों ने रीतिकाल के भीतर कुछ ऐसे कवियों को फुटकल खाते में डाल दिया है जो रीतिकाल की अधिक व्यापक प्रवृत्ति या शृंगार या प्रेम के उन्मुक्त गायक थे।इसमें आलम,घनानंद,बोधा,ठाकुर के नाम उल्लेखनीय हैं।शुक्ल जी का भी मत है कि यदि केवल रस के आधार पर कोई इस काल का नामकरण करे तो इसे शृंगारकाल कहा जा सकता है।

परंतु प्रश्न तो यह है कि रीतिकाल के कवियों ने क्या शृंगार-रस के ही अंगों का विवेचन किया है ? यदि समस्त रीतिकालीन साहित्य को इस दृष्टि से परखा जाए तो शृंगार की प्रधानता तो सर्वत्र है,लेकिन स्वतंत्र रूप से नहीं,सर्वत्र रीति पर आश्रित है।अत: इसे शृंगार काल नहीं कहा जा सकता और भूषण जैसे वीररस के कवि भी रीतिबद्ध कवि थे। कुछ आलोचक इस काल को 'कलाकाल' कहते हैं। उनके मत में काव्य के कला पक्ष का जितना उत्कर्ष इस काल में हुआ, उतना कभी नहीं हो सका।लेकिन केवलमात्र कला-पक्ष की प्रधानता को देखकर इसको कला-काल नहीं कहा जा सकता,क्योंकि साहित्य में भावपक्ष और कलापक्ष इस प्रकार जुड़े हुए हैं कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता।रीतिकाल के कवियों में भावों की उपेक्षा है,ऐसा कहना तो उन कवियों के प्रति अन्याय होगा।

इन सभी नामकरणों की विवेचना के उपरांत यही कहा जा सकता है कि रीतिकालीन सभी कवियों ने रीति-परम्परा का पूर्ण निर्वाह किया। अत: शृंगार रस की प्रधानता असंदिग्ध होने पर भी इसे शृंगारकाल नहीं कहा जा

सकता है और न ही अलंकारों का लक्षण-उदाहरण सहित विवेचन होने के कारण इसे अलंकृत काल कहना ही उचित होगा। कला काल कहना तो बिल्कुल अनुचित होगा, क्योंकि साहित्य में भावपक्ष के बिना कला का कोई महत्त्व नहीं। अत: रीतिकाल कहना ही तर्कसंगत प्रतीत होता है, क्योंकि रस, अलंकार आदि रीति पर आश्रित होकर आए हैं।

निष्कर्ष

1900 वीं सदी का आरंभ हिन्दी भाषा के विकास की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। इस समय देश में स्वतंत्रता आंदोलन प्रारंभ हुआ था। राष्ट्र में कई तरह के आंदोलन चल रहे थे। इनमें कुछ गुप्त और कुछ प्रकट थे पर इनका माध्यम हिंदी ही थी अब हिंदी केवल उत्तर भारत तक ही सीमित नहीं रह गई थी। हिंदी अब तक पूरे भारतीय आन्दोलन की भाषा बन चुकी थी। साहित्य की दृष्टि से बांग्ला, मराठी हिन्दी से आगे थीं परन्तु बोलने वालों के लिहाज से हिन्दी सबसे आगे थी। इसीलिए हिन्दी को राजभाषा बनाने की पहल गांधीजी समेत देश के कई अन्य नेता भी कर रहे थे। सन 1918 में हिंदी साहित्य सम्मलेन की अध्यक्षता करते हुए गांधी जी ने कहा था की हिंदी ही देश की राष्ट्रभाषा होनी चाहिए। सन 1900 से लेकर 1950 क हिंदी के अनेक रचनाकारों ने इसके विकास में योगदान दिया इनमे मुंशी प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, माखनलाल चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पन्त, महादेवी वर्मा आदि।

सन्दर्भ सूचि

[1]. आचार्य रामचंद्र शुक्ला, “हिंदी साहित्य का इतिहास”, पृष्ठ 142-144
[2]. ड़ॉ राकेश कुमार द्विवेदी, “आधुनिक काल में कवित्त और सवैया”, पृष्ठ 238-245
[3]. श्रुतिकान्त पाण्डेय, “हिन्दी भाषा और इसकी शिक्षण विधियाँ: हिन्दी भाषा और शिक्षण विधियों की परिचायक”, पृष्ठ 156
[4]. डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी, “हिंदी आलोचना”, पृष्ठ 141
[5]. bharatdiscovery.org/india/हिन्दी_साहित्य
[6]. https://hi.wikipedia.org/.../आधुनिक_हिंदी_गद्य_का_ इतिहास
[7]. www.hindietools.com/.../Hindi-sahitya-ka-itihas-kaal-vibhajan
[8]. https://hi.wikipedia.org/.../हिन्दी_साहित्य_का_इतिहास
[9]. www.essaysinhindi.com/education/हिंदी.विकास